इस्लाम और मानव समाज

सैयद मुहम्मद इक़बाल

मधुर सन्देश संगम
अबुल फ़ज़्ल इन्कलेव, जामिया नगर, नई दिल्ली-25

मधुर सन्देश संगम प्रकाशन नं० ७

इस्लाम और मानव-समाज

सैयद मुहम्मद इक़बाल

मधुर सन्देश संगम

अबुल फ़ज़्ल इन्कलेव जामिआनगर, नई दिल्ली - 25

पहली बार : १९९३ २०००

तीसरी बार. 1995 ४०००

Rs.

मधुर संदेश संगम

विषय-सूची

क्या		कहां
१.	इन्सान की ज़रूरत	३
२.	क्या धर्म इन्सान की ज़रूरत है?	४
३.	हमारे ज़माने का फ़ितना	६
४.	धर्म में बिगाड़	६
		७
५.	धार्मिक कारोबार	८
६.	धर्म सनातन है	९
७.	धर्मगुरु और धार्मिक शिक्षाएं	११
८.	क़ुरआन और हज़रत मुहम्मद सल्ल०	१२
९.	हज़रत मुहम्मद सल्ल०	१४
१०.	इस्लाम और उसका अर्थ	१५
११.	मौलिक आस्थाएं	१७
१२.	इबादत	१८
१३.	इस्लामी जीवन व्यवस्था	
१४.	इस्लाम और मानवता	
१५.	इस्लाम और ग़ैर मुस्लिम	२०
१६.	इस्लाम और जिहाद	२१
१७.	इस्लाम और न्याय	२२
१८.	इस्लाम और अपराध	२३
९.	इस्लाम और औरतें	२४
०.	विवाह और तलाक़	२६
.१.	इस्लाम और ग़रीबी	२८
२.	इस्लाम और आतंकवाद	२९
३.	इस्लाम कैसा समाज बनाता है	३०
४.	इस्लाम कैसा इन्सान बनाता है	३०
५.	आख़िरी बात	३१

दयावान, कृपाशील अल्लाह के नाम से

इस्लाम और मानव-समाज

इन्सान की ज़रूरत

धरती पर बसने वाले जानदारों में इन्सान ही सब से श्रेष्ठ है। उसकी ताक़त और बड़ाई बुनियादी तौर से उसके विवेक और बुद्धि में निहित है। उसे ज्ञान और बुद्धि जैसी असीम चीज़ देकर प्रकृति ने इसकी श्रेष्ठता का एलान ख़ुद ही कर दिया है। अपनी तमाम श्रेष्ठताओं के बाद भी मनुष्य अपनी ज़रूरतों से मजबूर-सा रहता है और जब तक उसकी ज़रूरतें पूरी न हो जायें, वह चिन्तित और दुखी रहता है। ये ज़रूरतें जन्म से मौत तक फैली हुई हैं और कुछ तो मरने के बाद भी रह जाती हैं।

ये ज़रूरतें अनगिनत हैं। कुछ तो वे हैं जिनके बिना इन्सान ज़िन्दा ही नहीं रह सकता। मुख्यतः ये तीन हैं—हवा, पानी और खाना। इनके बाद कपड़े और घर हैं। फिर शुरू होता है उन ज़रूरतों का सिलसिला, जो मानव समाज के विकास के लिए ज़रूरी हैं या फिर किसी व्यक्ति विशेष की ज़रूरतें।

इन्सान की बुनियादी ज़रूरतों की ज़िम्मेदारी प्रकृति ने स्वयं ले रखी है। किसी भी जानदार की पहली ज़रूरत—हवा समान रूप से हर जगह मौजूद है। पानी भी काफ़ी मात्रा में उपलब्ध है। भोजन और अन्य ज़रूरतों की पूर्ति के लिए साधन और अवसर प्रदान कर दिये गये

हैं और उनको उपयोग में लाने के लिए बुद्धि मिली हुई है। बुद्धि को काम में लाकर विकास की नई मंज़िलें तय की जा सकती हैं। इसी तरह इन्सान के मार्गदर्शन की ज़िम्मेदारी भी प्रकृति ने अपने ही पास रखी है।

प्रकृति की इस व्यवस्था को, जो उसने इन्सान के लिए की है, ज़रा निकट से देखने पर आंखें उसकी विचित्रता में गुम हो जाती हैं। बच्चे के जन्म लेते ही माँ के शरीर में उसके लिये सब से उपयुक्त और पौष्टिक आहार दूध के रूप में बनना शुरू हो जाता है। ज़मीन पर क़दम रखने से पहले उसे कितने सामानों से सजाया जाता है। देखने के लिये आंखें, सुनने के लिये कान, चलने के लिये पैर, बोलने के लिये जीभ और होंठ और सब से बढ़ कर सोचने के लिये दिमाग़। जन्म के समय वह एक बेबस-सा प्राणी होता है, जिसे माँ-बाप जैसा अपरिहार्य सहारा न मिले तो शायद वह ज़िन्दा ही न रह सके। कैसी उत्तम व्यवस्था प्रकृति ने की है!

क्या धर्म इन्सान की ज़रूरत है?

समाजशास्त्रियों ने इन्सान को एक 'सामाजिक' प्राणी कहा है। यह बात किसी हद तक सही ज़रूर है, मगर यह केवल इन्सान की विशेषता नहीं, इस लिए कि यह तत्व तो मधुमक्खियों, हिरनों और चींटियों में अधिक प्रबल नज़र आता है। सामाजिक प्राणी की जगह यदि उसे नैतिक प्राणी कहा जाये, तो ज़्यादा सही होगा और यही तो अन्य प्राणियों की तुलना में उसकी श्रेष्ठता भी है।

इस नैतिकता का स्रोत क्या है? वह क्या चीज़ है ज़ो मानवता से निःस्वार्थ प्रेम, कमज़ोरों और अन्य इन्सानों से अच्छा व्यवहार, दूसरों

के दुख दर्द में काम आना, ख़ुद कष्ट उठा कर दूसरों की सेवा करना, अच्छे और बुरे की परख, माँ, बेटी और पत्नी के बीच अन्तर करना सिखाती है? क्या भौतिकवाद से यह चेतना पैदा हो सकती है? नहीं, यह सब कुछ केवल धार्मिक आस्था और अनुभव से ही सम्भव है। यहां एक और प्रश्न उभरता है कि धर्म क्या है?

धर्म आस्था की उस शक्ति का नाम है, जो इन्सान को आंतरिक पवित्रता प्रदान करती है तथा उसके चरित्र में एक क्रान्ति लाती है। किसी ने ठीक ही कहा है कि धर्म इन्सान की अपनी पशुता पर उसकी नैतिकता की विजय का दूसरा नाम है।

मानव-जीवन को ज़रा गहराई से देखा जाये तो यह बात स्पष्ट रूप से सामने आती है कि मनुष्य की आवश्यकताएं केवल भौतिक ही नहीं, नैतिक भी हैं। प्रकृति ने जहां मनुष्य की ज़रूरतों का प्रबन्ध किया है, वहीं नैतिक और आध्यात्मिक ज़रूरतों की अनदेखी नहीं की है। धार्मिक विश्वास के कारण ही मनुष्य अपनी भौतिक इच्छाओं को नैतिक सीमाओं में रह कर पूरा करता है। इसी के कारण वह भौतिक लाभ और हानि से ऊपर उठकर बड़े-से-बड़े बलिदान के लिये तैयार हो जाता है। धर्म ने नैतिक तत्व को उभारा भी है और उसे प्रबल बनाने का भी प्रबन्ध किया है। नैतिकता का यही तत्व इन्सान के अन्दर निःस्वार्थ भाव पैदा करता है। इसी के कारण इन्सान किसी भौतिक लाभ, प्रशंसा और ख्याति से निर्लिप्त सेवा और त्याग का प्रदर्शन करता है। जिस तरह मनुष्य का जैविक अस्तित्व हवा, पानी और भोजन के बिना सम्भव नहीं, उसी तरह उसके नैतिक एवं आध्यात्मिक अस्तित्व के लिये धर्म भी ज़रूरी है।

हमारे ज़माने का फ़ितना

मानव सभ्यता का इतिहास बताता है कि विकास हर युग में होता रहा है और हर युग अपने वर्तमान में आधुनिक ही था। परन्तु हमारे युग में आधुनिकता एक फ़ितना, एक बिगाड़ एक कड़ी परीक्षा बन गयी। **डारविन** (DARWIN) की किताब (ORIGIN OF SPECIES) से **प्रेसट्रॉइका** (PRESTROICA) तक अजीब-अजीब विचार सामने आये और मनुष्य को प्रकृति के नियमों के विरुद्ध चलाने का प्रयास होता रहा। भौतिक विकास ने थोड़ी देर के लिये मनुष्य को इस धोखे में डाल दिया कि उसका अस्तित्व केवल भौतिक ही है और भौतिक ज़रूरतों की पूर्ति ही तक उसके सारे प्रयासों का अंत है। मानवता का ज़िक्र राजनैतिक दुनिया में तो बहुत हुआ पर भौतिकवाद के हाथों मानवता एवं मानव मूल्यों का ह्रास ही होता रहा। इस माहौल में मानवता और नैतिकता भी एक उपभोग की चीज़ बन गई जिसे पूंजीपतियों की इच्छा से खुदरा या थोक भाव से खरीदा-बेचा जा सकता हो। पर यह बात कभी नहीं भूलनी चाहिए कि मनुष्य के अचेतन में धर्म के बचे-खुचे प्रभाव का ही यह नतीजा है कि वह दरिंन्दगी और पाशविकता के उस स्तर तक नहीं गिरा, जहां तक अन्यथा उसे गिर जाना चाहिए था।

धर्म में बिगाड़

उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में ज्ञान के विकास के साथ धर्म के प्रति घृणा की भावना अस्ल में मध्यकालीन यूरोप के धार्मिक बिगाड़ का ही परिणाम था। सांसारिकता से ग्रस्त धार्मिक वर्ग ने

गिरजाघरों की धार्मिक और नैतिक हालत को बिल्कुल तबाह कर के रख दिया था। प्रसिद्ध लेखक WILL DURANT ने अपनी पुस्तक 'THE STORY OF CIVILIZATION' में गिरजाघरों के इस बिगाड़ की विस्तार से चर्चा की है। उसने लिखा है कि धार्मिक वर्ग किस तरह लोलुप और बेईमान हो गया था। धार्मिक अदालतें भ्रष्ट हो चुकी थीं। पैसे देकर फ़ैसले ख़रीदे जा सकते थे और बड़े-से-बड़े पाप की छूट प्राप्त की जा सकती थी। चन्द सिक्कों के बदले निर्वाण-पत्र ख़रीदे जा सकते थे, जिसके बाद हर प्रकार के पाप की खुली छूट मिल जाती थी। पूरा धार्मिक वर्ग शासनाधीन हो गया था और शासकों की मर्ज़ी के फ़तवे दिया करता था। इसकी प्रतिक्रिया भी उतनी ही तीव्र हुई। धार्मिक सुधार के लिये यूरोप में एक आन्दोलन शुरू किया गया, मगर दुर्भाग्यवश इसने ईसाइयत बल्कि धर्म को ही हानि पहुंचाई। उस समय का धार्मिक वर्ग यदि थोड़ी-सी बुद्धि से काम लेता तो विज्ञान और धर्म के बीच संघर्ष की स्थिति उत्पन्न न होती। उस पर औद्योगिक क्रान्ति ने पूरे माहौल और सारे रिश्तों को दौलत की होड़ में बदल कर रख दिया और इस तरह धर्म और धार्मिक मूल्य की क़दरो क़ीमत बाक़ी न रह गई।

धार्मिक कारोबार

धर्म के नाम पर कारोबार न तो चर्चों तक सीमित था और न विशेष समय तक। धर्म का नाम लेकर अपनी दुकान चमकाने और भौतिक लाभ उठाने का काम हर युग में किया जाता रहा है और आज भी हो रहा है। धर्म का नाम लेकर और धार्मिक भावनाओं को भड़का कर अपना काम निकालना और लाभ उठाना कुछ लोगों के लिये बड़ा प्रिय धन्धा रहा है। सर्वविदित है कि सच्चे धर्म का और धर्म की सच्चे

रूह का इस से कभी कुछ लेना-देना नहीं रहा। क़ुरआन ने लोगों को बार-बार होशियार किया है कि अल्लाह की बातों को कुछ फ़ायदे के लिये बेच न देना।

धर्म सनातन है

हमारी इस दुनिया में अनेक धर्म और उनके मानने वाले हैं। धर्म की उत्पत्ति पर दर्शनशास्त्रियों ने भारी वाद-विवाद किया है। इस विषय पर क़ुरआन भी प्रकाश डालता है। एक बड़ी सीधी-साधी और तर्क संगत व्याख्या करता है। वह बताता है कि इन्सान की भौतिक ज़रूरतों की तरह उसकी नैतिक ज़रूरतों और मार्गदर्शन की व्यवस्था उसके स्रष्टा और स्वामी ने विशेष रूप से की है। धर्म का आधार यही ईश्वरीय मार्गदर्शन है, जिसके प्रति श्रद्धा और विश्वास और जिसका पालन धर्म है।

क़ुरआन बताता है कि जिस पहले इन्सानी जोड़े को ज़मीन पर भेजा गया, उसे मार्गदर्शन और जीवन-यापन के नियम बता दिये गये थे। उसके बाद उसकी संतानों ने कुछ समय तक उन नियमों का पालन किया। फिर धीरे-धीरे उन्हें भुला कर अपनी इच्छा की पैरवी करने लगे। जब यह स्थिति हो गई तो ईश्वर ने अपने किसी दूसरे पैग़म्बर को अपने आदेशों और नियमों के साथ भेजा। यह सिलसिला चलता रहा और ज़मीन के हर हिस्से में ख़ुदा के पैग़म्बर आते रहे, यहां तक की हज़रत महम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को पूरी मानवता के लिये अन्तिम दूत बना कर भेजा गया। क़ुरआन कहता है :

''शुरू में सब लोग एक ही मार्ग पर थे। फिर यह हालत बाक़ी न रही और विभेद प्रकट हुए, तब अल्लाह ने नबी (ईशदूत) भेजे जो

सीधे मार्ग पर चलने पर शुभ सूचना देने वाले और भले-बुरे रास्ते पर चलने के परिणामों से डराने वाले थे और उनके साथ सत्यानुकूल पुस्तक उतारी, ताकि सत्य के विषय में लोगों के बीच जो विभेद उत्पन्न हो गये थे, उनके निर्णय करें।" (बक़रा : २१३)

क़ुरआन बताता है कि सत्य पा चुकने के बाद लोगों ने आपस में ज़्यादती करने के लिये उन आदेशों को भुला दिया और विभेद पैदा कर लिये।

स्पष्ट है कि अनादिकाल से धर्म के रूप में ईश्वरीय नियम और आचार-संहिता मौजूद रही हैं। इन्सानी समाज का कोई दौर और कोई देश धर्म से ख़ाली नहीं रहा है। जर्मन दार्शनिक मैक्स मूलर (MAX MEULLER) ने कहा है, "मानव इतिहास धर्म का इतिहास है।" (THE HISTORY OF MAN IS THE HISTORY OF RELIGION)

धर्मगुरु और धार्मिक शिक्षाएँ

धर्म का इतिहास और आज संसार में पाये जाने वाले धर्मों के अध्ययन से भी इस बात की पुष्टि होती है कि धर्म शुरू से एक ही था। धार्मिक शिक्षाओं में आज भी बड़ी समानता है। मूल नैतिक शिक्षाएँ तो बहुत मिलती-जुलती हैं। बड़ी-बड़ी भलाइयाँ जिन्हें करने का हुक्म दिया गया है और बड़ी-बड़ी बुराइयां जिनसे रुकने के लिये कहा गया है एक ही सी हैं। यह विश्वास करने का ऐसा मज़बूत आधार है कि आरम्भ में धर्म का स्वरूप एक ही रहा होगा।

ईशदूतों और सच्चे धर्मगुरुओं ने एक ईश्वर की उपासना का संदेश दिया और ईश्वरीय नियमों के अनुसार जीवन बिताने का

आह्वान किया। परन्तु यह एक आश्चर्यजनक सत्य है कि लोगों ने अपने अन्धविश्वास में ईशदूतों और धर्मगुरुओं की ही पूजा शुरू कर दी और उन्हें ही ईश्वर का स्थान दे दिया; उन से ही मदद मांगने लगे। अपने धर्म का नाम भी धर्मगुरु के नाम पर रख लिया, हालांकि तमाम ईशदूतों द्वारा लाये गये धर्म का नाम भी एक ही था 'इस्लाम'। हज़रत ईसा के अनुयायियों ने उन्हें ईश्वर का बेटा घोषित कर दिया, जब कि हज़रत ईसा ने भी अन्य ईशदूतों की तरह एक ईश्वर की उपासना सिखाई थी। इन लोगों ने अपने धर्म का नाम ईसा (CHRIST) के नाम पर इसाई धर्म (CHRISTIANITY) रख लिया। धर्मगुरुओं के नाम पर धर्मों के नामकरण का उदाहरण विश्व के बड़े-बड़े धर्म स्वयं ही हैं। जैसे :– BUDHISM, JAINISM, ZOAROSTERMISM इत्यादि। हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के मानने वाले अपना धर्म इस्लाम ही मानते हैं 'MOHAMMADANISM' नहीं, हांलाकि यूरोप ने यह नाम फैलाने का हर सम्भव प्रयास किया।

अब ज़रा विभिन्न धर्मों की धार्मिक शिक्षाओं पर एक नज़र डालें। इस्लाम ने सिखाया :–

- ईश्वर एक है, उसका कोई शरीक नहीं, न ज़ात में, न गुणों में और न इख़्तियारात में।
- ईश्वर ने बन्दों के मार्ग-दर्शन के लिए अपने पैग़म्बर भेजे। सभी पैग़म्बरों पर ईमान लाना ज़रूरी है।
- एक दिन यह दुनिया ख़त्म हो जायेगी। फिर हमें दोबारा ज़िन्दा किया जायेगा और अपने कर्मों का हिसाब ईश्वर को देना होगा।
- सच बोलो और सच के गवाह बनो।
- किसी को न सताओ, कमज़ोरों की मदद करो।

- किसी इन्सान का ख़ून न बहाओ।
- सारे इन्सान आपस में भाई-भाई हैं।
- न्याय क़ायम करो। इत्यादि।

जोरोस्टर ने कहा–

- ईश्वर एक हैं, जो सर्वशक्तिमान है।
- मनुष्य अपने कर्म के अनुसार स्वर्ग या नरक में जायेगा।
- सच्चाई की हमेशा जीत होती है।

जैन मत की पांच मौलिक बातें ये हैं–

- सदा सच बोलो।
- लालच से बचो।
- चोरी न करो।
- किसी जीव को न सताओ।
- अपनी इच्छा को मार कर जीवन बिताओ।

इसी प्रकार बौद्ध धर्म में सच्ची सेवा, सच्चा ज्ञान, सच्चे विचार, सच्ची भावना की शिक्षा बहुत उभरी हुई है।

वेदों में इस तरह की शिक्षाएं मिलती हैं–

- सब लोग एक ही परिवार हैं।
- सैकड़ों हाथों से जमा करो और हज़ारों हाथों से बांट दो।
- प्रशंसा और नमस्कार योग्य एक ही है।
- अच्छे विचारों को हर ओर से आने दो।

क़ुरआन और हज़रत मुहम्मद (सल्ल०)

क़ुरआन साधारणतः मुसलमानों की धार्मिक किताब के रूप में जानी जाती है। वास्तव में यह पूरी मानव-जाति के लिये उसके मालिक का भेजा हुआ सन्देश है। यह ईश्वरीय किताबों का अन्तिम और पूर्ण

संस्करण है। क़ुरआन के बाद कोई ईश्वरीय किताब दुनिया में कहीं नहीं पायी जाती। यह किताब मनुष्यों के मार्गदर्शन के लिये आयी है और जीवन के हर पहलू में रास्ता दिखाती है। यह किताब संसार के प्रति मनुष्य के दृष्टिकोण को स्पष्ट करती है; उसे जीवन बिताने का तरीक़ा सिखाती है; उसे उसके कर्तव्यों की याद दिलाती है; उसे अच्छे कामों के फ़ायदे बताती और बुरे कामों के दुष्परिणामों से डराती है।

यह किताब हमारे पास उसी तरह अक्षरशः उपलब्ध है जिस तरह हज़रत मुहम्मद (स०) पर अवतरित हुई थी। हमारे पास पहली इस्लामी शताब्दी से आज तक की प्रतिलिपियाँ उपलब्ध हैं, जो एक-दूसरे को प्रमाणित और पुष्ट करती हैं। क़ुरआन दुनिया की एकमात्र ऐसी किताब है, जिसे हर ज़माने में हज़ारों लोगों नें पूरा-पूरा कंठस्थ रखा है। पूरा क़ुरआन कंठस्थ करने वाले को हाफ़िज कहते हैं। ये हाफ़िज़ हर वर्ष रमज़ान के महीने की रात को नमाज़ में पूरा क़ुरआन पढ़ते हैं। इस तरह पूरी दुनिया की लाखों मस्जिदों में पूरा क़ुरआन दोहराया जाता है।

इस किताब की एक और विशेषता भी है। यह किताब एक बार लिख कर हज़रत मुहम्मद (स०) को नहीं दी गई थी, बल्कि पैग़म्बर के रूप में उनके २३ वर्षीय जीवन में थोड़ा-थोड़ा अवतरित होती रही। हज़रत मुहम्मद (स०) द्वारा इस्लाम की स्थापना के प्रयास से सीधा जुड़ा था अवतरण का यह सिलसिला।

हज़रत मुहम्मद (स०)

जिस तरह क़ुरआन मुसलमानों की किताब समझी जाती है, उसी तरह हज़रत मुहम्मद (स०) को मुसलमानों का पैग़म्बर समझा जाता

है। वास्तव में यह बात भी सही नहीं है। अल्लाह ने हज़रत मुहम्मद (स०) को सारी मानवता के लिये अपना दूत बना कर भेजा।

सारे धर्मगुरुओं में हज़रत मुहम्मद (स०) का जीवन ही सब से अधिक विस्तार और विश्वसनीयता के साथ हमें उपलब्ध है—उनका जीवन भी और उनकी शिक्षाएं भी। हज़रत मुहम्मद (स०) का जन्म इतिहास के एक ऐसे मोड़ पर हुआ जब संस्कृति का उजाला फैल चुका था और मानवता अपने आधुनिक युग में प्रवेश कर रही थी।

हज़रत मुहम्मद (स०) का जन्म मक्का में हुआ, जो एक छोटा-सा शहर था। आपने जन्म लिया तो परिस्थितियाँ पूर्णतः विपरीत थीं। बाप की मृत्यु जन्म से पहले ही हो गई। माता की ममता भी अधिक दिनों तक साथ न दे सकी। कोई बड़ा भाई भी न था। चचा अबू तालिब का एक छोटा-सा सहारा था। आर्थिक स्थिति भी ख़राब थी। इसीलिये आपको बकरियाँ चरानी पड़ीं और दूसरों की व्यापार सामग्री लेकर निकलना पड़ा। आपके पास सब से बड़ी दौलत चरित्र की थी, जिसकी ख़ुशबू पूरा मक्का महसूस करता था। आपको अमानतदार के नाम से याद किया जाता। लोग अपनी क़ीमती चीज़ें उनके पास रख कर सुरक्षित समझते। लोग आप पर विश्वास करते, आपकी बात मानते। यदि कोई झगड़ा हो जाता और किसी तरह समाप्त होता नज़र न आ आता तो लोग आपको पंच मान लेते और आप के निर्णय को स्वीकार कर लेते।

जब आपकी उम्र चालीस साल की हुई तो अल्लाह ने आपको अपना रसूल (ईशदूत) घोषित किया और आपके पास क़ुरआन के अंश आने लगे। अल्लाह का संदेश लेकर वह लोगों के पास गये। उन से कहा कि वे केवल एक अल्लाह की उपासना करें और मूर्तिपूजा छोड़ दें। उनसे कहा कि सच बोलो; न्याय करो; किसी का माल हड़प न कर

लो; सारे इन्सान एक माँ-बाप की संतान हैं, उनमें कोई भेदभाव नहीं है। इन बातों को सुनकर मक्का के लोग बिगड़ गये; बल्कि आपके दुश्मन हो गये। उन्हें सताया, यहां तक कि उन्हें जान से मार देने की योजना बना ली। ऐसे में हज़रत मुहम्मद (स०) ने मक्का छोड़ने का फ़ैसला कर लिया। मदीना के लोगों ने उनका साथ देने की शपथ ली और अपने शहर में उन्हें जगह दी। कुछ वर्षों में यहां एक आदर्श इस्लामी समाज स्थापित हो गया। मक्का के लोग यहां भी लड़ने के लिये आये, पर पराजित हो कर लौट गये, यहां तक कि हज़रत मुहम्मद (स०) और उनके साथियों का मक्का पर अधिकार हो गया। इस्लामी राज्य हज़रत मुहम्मद (स०) के बाद भी फैलता रहा। राज्य ही नहीं, आपकी शिक्षाएं और क़ुरआन सुदूर पूर्व तक फैल गया।

इस्लाम और उसका अर्थ

हज़रत मुहम्मद (स०) के द्वारा इस्लाम हम तक पहुंचा है। इस्लाम अरबी भाषा का शब्द है, जिसका एक अर्थ है 'आज्ञापालन' और दूसरा 'शांति'। मुस्लिम आज्ञाकारी को कहते हैं—अर्थात अल्लाह का आज्ञाकारी, उसका आदेश मानने वाला, उसके आगे सिर झुका देने वाला। अल्लाह ने जितने पैग़म्बर भेजे उन सब ने ऐकेश्वरवाद का पाठ पढ़ाया। किसी ने अपनी उपासना का हुक्म नहीं दिया, किसी ने ख़ुद को ईश्वर या उसका रूप नहीं कहा। यह बात बड़ी विचित्र रही है कि अधिकतर लोगों ने अपने पैग़म्बरों को झुठलाया, उनकी बात न मानी, बल्कि उन्हें सताया, यातनाएं दीं और जब उनकी मृत्यु हो गई तो उन्हें पूज्य घोषित कर दिया, उनकी मूर्तियां बनाने लगे और उसी से सहायता मांगने लगे। वास्तव में सारे पैग़म्बरों का धर्म एक ही था 'इस्लाम'। सब का परम उद्देश्य ईश्वर

का आज्ञाकारी बनाना था यह भी उल्लेखनीय है कि इस पूरे संसार का धर्म भी इस्लाम ही है। ज़मीन, सूर्य, पहाड़, हवा, पेड़-पौधे, बादल, चांद, तारे, सब उस नियम का पालन कर रहे हैं, जिस का बनाने वाले ने उन्हें पाबन्द कर दिया है।

मौलिक आस्थाएं

इस्लामी आस्था के तीन मौलिक तत्व हैं, जिन्हें मान कर आज्ञाकारी जीवन का आरम्भ होता है और जिन में से किसी के इन्कार से एक व्यक्ति मुस्लिम बाक़ी नहीं रह जाता।

पहला एक ईश्वर पर ईमान—उस ईश्वर पर जो संसार का बनाने वाला, उसका मालिक और हाकिम है, जिसके हाथ में जीवन और मृत्यु है; जो अपनी पूरी सृष्टि पर पूरी नजर रखे हुए है और तमाम जीवों के भोजन का प्रबन्ध करने वाला है, जो अपने बन्दों की पुकार को सुनता है और उसका जवाब देता है जो सर्वशक्तिमान है और मनुष्य के लिये क़ानून बनाने का अधिकार केवल उसे ही है और यह कि वह अपने गुण और अधिकार हस्तांतरित नहीं करता।

दूसरा ईशदूतों (पैग़म्बरों) पर ईमान—यह विश्वास कि अल्लाह ने हर युग में और हर इन्सानी आबादी में अपने पैग़म्बर भेजे, जो उसके आदेशों को पहुचाते और जीवन बिताने का सही ढंग सिखलाते। यह सिलसिला हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) पर समाप्त कर दिया गया। हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के अन्तिम पैग़म्बर होने की बात कुछ लोगों के लिये प्रश्नचिह्न बन जाती है। अब पैग़म्बर क्यों

नहीं आयेंगे? जवाब आसान है। यदि हम यह जान लें कि पैग़म्बर आते क्यों थे? पैग़म्बर के आने का एक कारण तो यह होता कि किसी विशेष क्षेत्र में अल्लाह का पैग़ाम न पहुंचा हो, दूसरा यह कि पिछले पैग़म्बर की लाई हुई शिक्षा मिट गई हो और तीसरा यह कि अभी अल्लाह की और हिदायतों और आदेशों की ज़रूरत बाक़ी रह गई हो। जब ये ज़रूरतें पूरी हो गईं तो फिर यह सिलसिला बन्द कर देना ही मुनासिब था। अल्लाह की किताब और हज़रत मुहम्मद (स०) की जीवनी और शिक्षा हमारे पास सुरक्षित है। ये दोनों चीज़ें पूरी दुनिया में फैल चुकी हैं, केवल अरब देश तक सीमित नहीं है, और तीसरे यह कि जो ज़रूरी आदेश इन्सानों को देने थे वे भी पूरे कर दिये गये और यह घोषणा, क़ुरआन के शब्दों में, करा दी गई–"आज मैंने तुम्हारे दीन को तुम्हारे लिये पूर्ण कर दिया।"

तीसरा, आख़िरत पर विश्वास–इन संसार में हमारा जीवन नश्वर है। हम यहां सदा रहने के लिये नहीं आये हैं। हमें यहां से लौटना है। इस जीवन के बाद एक और जीवन है, जो हमेशा रहने वाला है। यह दुनिया एक परीक्षा-स्थल है। इसके बाद वाले जीवन में हमें अपने कर्मों का हिसाब देना होगा। हमारा वर्तमान संसार भी नश्वर है, एक दिन यह ख़त्म हो जायेगा। सारे इन्सानों को फिर से उठाया जायेगा और उन से उन के किये का हिसाब लिया जायेगा, जिन लोगों ने अच्छे कर्म किये होंगे, उन्हें स्वर्ग का आराम मिलेगा और जिन लोगों ने ईश्वरीय आदेशों के विपरीत जीवन बिताया होगा, वे सज़ा के घर 'जहन्नम' में डाले जायेंगे।

इन तीन सच्चाइयों को मानने का ही दूसरा नाम इस्लाम स्वीकार करना है। इन बातों को मानना और न मानना बराबर नहीं है। इनको मानने और न मानने से जीवन के दो पूर्णतः भिन्न दृष्टिकोण उभरते हैं

और उन पर चलने के परिणाम भी सर्वथा भिन्न होते हैं। ये तीनों आस्थाएं जीवन को एक विशेष दिशा और विश्वसनीयता प्रदान करती हैं, एक उत्तरदायी मनुष्य बनाती हैं। उसके चरित्र को उज्ज्वल बनाती और उसके दिल को शान्ति प्रदान करती हैं।

इबादत

उपर्युक्त तीनों सच्चाइयों को दिल से मान लेने के बाद आज्ञापालन शुरू होता है। आम तौर से लोग पूजा-पाठ ही को इबादत समझते या कहते हैं। जैसे नमाज़ एक इबादत है। परन्तु इबादत का इस्लामी अर्थ इतना सीमित नहीं है। अल्लाह की इबादत केवल मस्जिद में ही नहीं होती और किसी विशेष समय ही नहीं होती, बल्कि चौबीसों घण्टे होती है और हर जगह करनी पड़ती है।

इबादतों में चार इबादतें सामूहिक होने के नाते विशेष महत्व रखती हैं। ये हैं—नमाज, रोज़ा, हज, ज़कात। नमाज़ हर रोज़ पाँच बार अदा की जाती है। रोज़ा हर साल एक महीना रखा जाता है, जिस के लिये रमज़ान का महीना तय है। तीसरी इबादत 'ज़कात' है। यह एक माली (आर्थिक) इबादत है और मालदारों से सम्बन्धित है। साल भर के ख़र्च के बाद जिन लोगों के पास जमा होते हैं, उसका ढाई प्रतिशत निकाल कर सामूहिक रूप से ग़रीब पीड़ित, बेसहारा, क़ैदी इत्यादि पर ख़र्च करना ज़कात है। जिन लोगों के पास साढ़े सात तोले से अधिक सोना हो, उन्हें भी ज़कात देनी पड़ती है। हज़ जीवन में एक बार अनिवार्य है। अगर मक्का पहुंचने का सामर्थ्य हो और सुरक्षित यात्रा संभव हो।

इस्लाम हमें सिखाता है कि हमारा पूरा जीवन अल्लाह की

इबादत में गुज़रना चाहिए। अल्लाह की मर्ज़ी के अनुसार किया जाने वाला हर काम इबादत है। सच बोलना, झूठ से बचना, माता-पिता की सेवा करना, पड़ोसी का ख्याल रखना, इन्सानों के काम आना, न्याय क़ायम करना, बुराइयों को मिटाना, रास्ते से पत्थर और कांटे को हटाना भी इबादत है। जिस प्रकार नमाज़ अदा करके या रोज़ा रख कर एक व्यक्ति अल्लाह को खुश करता और पुण्य का हक़दार होता है, उसी तरह दूसरी इबादतों से अल्लाह की खुशी और पुण्य प्राप्त होता है।

इस्लामी जीवन व्यवस्था

यदि इस्लाम पूरे जीवन में अल्लाह के आज्ञा पालन का नाम है और वह मात्र किसी विशेष समय की पूजा तक सीमित नहीं है, तो प्रश्न उठता है कि क्या इस्लाम में जीवन बिताने के वे सारे नियम मौजूद हैं, जो हर पहलू से हमारा मार्गदर्शन कर सकें। जी हाँ, इस्लाम निश्चित रूप से एक पूर्ण जीवन व्यवस्था प्रदान करता है। व्यक्ति के निजी जीवन से अर्न्तराष्ट्रीय सम्बन्धों तक सारे नियम और तरीक़े इस्लाम हमें देता है। इस्लाम की अपनी नैतिक व्यवस्था, पारिवारिक व्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था, राजनैतिक व्यवस्था, आध्यात्मिक व्यवस्था और आर्थिक व्यवस्था पूरे विस्तार के साथ मौजूद है और जो मात्र काल्पनिक नहीं है, बल्कि जिसे प्रयोग में लाया जा चुका है। जीवन की सारी समस्याओं पर इस्लाम अपना एक दृष्टिकोण रखता है। यहां हम कुछ ऐसे प्रश्नों पर इस्लामी दृष्टिकोण जानने का प्रयास करेंगे, जो आज के सामाजिक परिप्रेक्ष्य में विशेष महत्व रखते हैं।

इस्लाम और मानवता

रंग, जाति, सम्प्रदाय, भाषा, क्षेत्र, देशों और राष्ट्रों में बंटी इस दुनिया में मानवता के प्रति इस्लाम का दृष्टिकोण विशेष महत्व रखता है।

इस्लाम इन्सानों के सामने विश्व-बन्धुत्व का विचार पेश करता है। इन्सानों को याद दिलाता है कि मानवता की शुरूआत एक पुरुष और एक स्त्री से हुई है। आज दुनिया में जितने भी इन्सान पाये जाते हैं, वे सब एक माँ-बाप की संतान हैं। इन सब का बनाने वाला एक ही है और सब-के-सब एक ही तत्व से बने हैं। अतः ऊंच-नीच, छूत-छात एक निराधार चीज़ है और इस्लामी समाज में इसकी कोई जगह नहीं। क़ुरआन बताता है :

"लोगो, अपने प्रभु से डरो जिस ने तुम को एक जीव से पैदा किया और उसी जीव से उसका जोड़ा बनाया। उन दोनों से बहुत-से पुरुष और स्त्री संसार में फैला दिये।" (निसा : १)

मानवता के प्रति इस्लाम के दृष्टिकोण को हज़रत मुहम्मद (स०) के शब्दों में स्पष्टतः समझा जा सकता है :

"लोगो, होशियार रहो, तुम सब का मालिक एक है। किसी अरब को किसी ग़ैर अरब पर और किसी ग़ैर अरब को किसी अरब पर और किसी गोरे को किसी काले पर और किसी काले को किसी गोरे पर कोई श्रेष्ठता प्राप्त नहीं है, मगर तक़वा में।" (अर्थात अच्छे कामों और अल्लाह से डरने में)

इस्लाम की नज़र में ज़मीन पर बसने वाले सारे इन्सान बराबर

हैं। रंग, नस्ल, भाषा और क्षेत्र के आधार पर किसी को किसी पर कोई श्रेष्ठता नहीं। इस्लाम सारे इन्सानों को एक सूत्र में बांधता और इन्सान के अन्दर की इन्सानियत को जगाता है।

इस्लाम और ग़ैर मुस्लिम

इस्लाम सारी मानवता के लिये अल्लाह की ओर से भेजी गई जीवन व्यवस्था है। इसी के साथ-साथ यह भी एक तथ्य है कि हर युग में इसको मानने और न मानने वाले अर्थात मुस्लिम और ग़ैर-मुस्लिम के दो गिरोह रहे हैं। न मानने वालों के प्रति इस्लाम क्या रुख़ अपनाता है? हम इस प्रश्न का जवाब हासिल करने का प्रयास करेंगे।

इन्सान को इस धरती पर पूरी आज़ादी के साथ भेजा गया है। उसके सामने सारी सच्चाइयां रख दी गई हैं और उसे पूरी आज़ादी दी गई है कि वह चाहे तो इस्लाम को स्वीकार करे और चाहे तो अस्वीकार कर दे। अल्लाह ने जबरी हिदायत का तरीक़ा नहीं अपनाया। सही और ग़लत रास्ता और उन पर चलने का फल लोगों के सामने रख दिया गया और फिर उन्हें चयन की आज़ादी दे दी गई। इस्लाम की बातें लोगों के सामने रखी जायें, लेकिन जो लोग उसे न मानें उन से कोई झगड़ा न किया जाय; सम्बन्ध ख़राब न किये जाये; वे जिनको पूजते हैं, उन्हें बुरा भला न कहा जाये, उनका दिल न दुखाया जाये—यह है इस्लाम की शिक्षा। क़ुरआन कहता है:

".....अब जिस का जी चाहे मान ले और जिस का जी चाहे न माने।" (कहफ़: २९)

"ये लोग अल्लाह के सिवा जिनको पुकारते हैं, उन्हें गालियां न दो।" (अनआम: १०८)

"दीन (धर्म) में कोई ज़बरदस्ती नहीं।" (बकरा: २५६)

यदि किसी देश में इस्लामी सरकार हो तो उसका कर्तव्य है कि वह इस्लाम को न मानने वालों को भी देश का सम्मानजनक नागरिक माने। उन्हें नागरिकों के सारे अधिकार मिलें, उनकी जान-माल और पूजास्थलों की सुरक्षा का प्रबन्ध हो।

इस्लाम और जिहाद

पश्चिमी साम्राज्य ने अपने औपनिवेशिक युग में जिहाद के विरुद्ध ख़ूब प्रचार किया, और जिहाद की भयानक तस्वीर पेश करने में कोई कसर नहीं छोड़ी और यह सब कुछ उस समय हुआ, जब स्वयं उनके अत्याचारों से आधी दुनिया पीड़ित थी। आज भी युरोप और अमेरिका अपने आर्थिक और राजनैतिक फ़ायदों के लिये तोपों, टैंकों, मिज़ाइलों, युद्धपोतों और आधुनिकतम हथियारों से जिस देश पर चाहें पिल पड़ें। सब तर्कसंगत और उचित समझाने की कोशिश की जाती है, पर जैसे ही इस्लाम और जिहाद का शब्द आया दुष्प्रचार का रिकार्ड खोल दिया जाता है।

'जिहाद' अरबी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है—अनथक प्रयास। ऐसा प्रयास जिसमें कोई कसर न रह जाये, यहां तक की यदि जान लड़ानी पड़े तो उसमें भी पीछे न हटा जाये। जिहाद केवल युद्ध के मैदान ही में नहीं होता, बल्कि जिहाद वास्तव में उस सतत प्रयास का दूसरा नाम है, जो अल्लाह के दीन को फैलाने और अल्लाह की ख़ुशी के लिये एक अच्छा बुराई रहित समाज बनाने के लिये किया जाय। इस प्रयास में कभी हथियार उठाने की ज़रूरत भी हो सकती है। परन्तु मूलतः जिहाद केवल जंग के हथियारों से नहीं होता। क़ुरआन ने कई

बार जिहाद की अपील की है, केवल जान से नहीं, बल्कि माल से भी जिहाद करने को कहा है। इस्लाम जब अपने मानने वालों से जिहाद के लिये कहता है तो उसका अर्थ होता है कि ज़मीन से फ़साद और अन्याय को मिटाने के लिये ज़ोरदार प्रयास किया जाये और जो कुछ है सब दांव पर लगा दिया जाये।

इस्लाम और न्याय

यह बात स्पष्ट की जा चुकी है कि इस्लाम मात्र पूजा-पाठ के कुछ नियमों का नाम नहीं, बल्कि यह तो एक पूरी जीवन व्यवस्था है। इस्लाम की स्थापना का जो लक्ष्य पैग़म्बरों के समक्ष था, उसका केन्द्र बिन्दु न्याय ही रहा है। इस्लाम का लक्ष्य अन्याय और शोषण से मुक्त समाज की स्थापना है। न्याय की स्थापना का हुक्म क़ुरआन ने बार-बार दिया है और यही ताकीद हज़रत मुहम्मद (स०) ने की है और उनका पूरा जीवन इस प्रयास का प्रतीक है।

इस्लाम में न्याय की कोई अधूरी कल्पना नहीं है। क़ुरआन हर व्यक्ति से कहता है कि वह न्याय पर क़ायम हो, केवल सामाजिक न्याय ही नहीं, व्यक्तिगत न्याय भी क़ायम हो। लोग अपने सारे मामले और सम्बन्धों में न्याय को न छोड़ें। क़ुरआन कहता है:—

"हे ईमान लाने वालो। इन्साफ़ के ध्वजावाहक और अल्लाह के लिये गवाह बनो, चाहे तुम्हारा इन्साफ़ और तुम्हारी गवाही स्वयं तुम्हारे अपने या तुम्हारे माता-पिता और नातेदारों के विरुद्ध ही क्यों न पड़ती हो।" (आले इमरान: १३५)

"निःसन्देह अल्लाह न्याय और भलाई करने और नातेदारों को

(उनका हक़) देने का आदेश देता है और अश्लील कर्म और बुराई और सरकशी से रोकता है।" (अन-नह्‌ल : १०)

"**हे ईमान वालो! अल्लाह के लिए न्याय पर मज़बूती के साथ क़ायम रहने वाले बनो, इन्साफ़ की गवाही देते हुए और ऐसा हरगिज न हो कि किसी गिरोह की दुश्मनी तुम्हें इस बात पर उभार दे कि तुम न्याय करना छोड़ दो। न्याय करो, यही कर्म परायणता के अनुकूल बात है।" (माइदा : ८)**

इस्लाम केवल उस न्याय की बात नहीं करता जो न्यायालय में मिलता है, बल्कि वह हर जगह, हर व्यक्ति के लिये न्याय का प्रबन्ध करता है। राजनैतिक, आर्थिक, और पारिवारिक जीवन में न्याय स्थापित करता है। उस न्याय का लाभ बच्चों, महिलाओं, मज़दूरों ग़रीबों और समाज के सताये हुए लोगों तक पहुंचता है।

इस्लाम और अपराध

जिस प्रकार प्रकाश और अँधेरा एक जगह इकट्ठा नहीं हो सकते, उसी तरह इस्लाम की उपस्थिति में अपराध अपना डेरा नहीं डाल सकता। इस्लामी क़ानून ऐसी नैतिक और आर्थिक व्यवस्था देता है, जो अपराध की ओर जाने से रोकती है, फिर इस्लाम ऐसा वातावरण बनाता है, जिसमें अपराध का अवसर कम-से-कम रह जाता है। इसके बाद अपराध के विरुद्ध ऐसी कारगर सज़ाओं का हुक्म देता है, जो अपराधियों को हतोत्साहित कर सकें।

इस्लाम की प्रस्तावित सज़ाओं पर पश्चिम में बढ़ी आपत्तियां उठाई जाती हैं। उसे क्रूर और कठोर की संज्ञा दी जाती है। सच यह है कि सज़ाओं और दण्ड के बीच पूरा संतुलन रखा गया है। जैसा

अपराध वैसी सज़ा। जघन्य अपराध पर कड़ी सज़ा न दी जाये तो और क्या किया जाये। घिनौने अपराध पर कड़ी सज़ाओं से मानवीय पक्ष कमज़ोर नहीं पड़ता, प्रबल होता है और एक स्वस्थ अपराध रहित समाज बनाने में सहायक होता है। हत्या, बलात्कार, चोरी जैसे अपराध हर दौर में होते रहे हैं, मगर इतिहास साक्षी है कि जब-जब कोई इस्लामी समाज बना है, उस ने इनका पूर्ण उन्मूलन किया है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का उदाहरण ले लीजिए, जहां हर सेकेंड चोरी और हर कुछ मिनट पर हत्या होती है और बलात्कार तो शायद अपराध रहा भी नहीं। इसकी तुलना में सऊदी अरब को ले लें, जहां पूरा इस्लाम तो लागू नहीं है, मगर दण्ड का नियम ज़रूर लागू है । वहां चोरी की घटनायें बस कभी-कभी ही होती है और क़त्ल तो शायद पूरे वर्ष में कभी होता है।

इस्लाम और औरतें

इस्लाम से जुड़ा एक बहुचर्चित विषय महिलाओं का भी है। यह आरोप लगाया जाता रहा है कि इस्लाम औरतों के साथ पक्षपातपूर्ण रवैया अपनाता है। ऐसे आरोपों को स्वर मूलतः पश्चिम में दिया जाता है।

यदि ये लोग यह चाहते हों कि इस्लाम भी महिलाओं के साथ उस व्यवहार की पुष्टि करे, जो पश्चिम में उनके साथ हो रहा है तो उसका जवाब साफ़ शब्दों में 'नहीं' है । दोनों का आदर्श एक दूसरे से उलटा है । इस्लाम महिलाओं को जो शालीनता, गौरव, सम्मान और संरक्षण देता है, उसका कोई जोड़ उस सभ्यता से कैसे सम्भव है, जहां उसे काल गर्ल (CALL GIRL) बनाया जाता हो, उसे नंगा किया जाता हो

और उसे पुरुषों की इच्छाओं की पूर्ति की एक सामग्री मान लिया गया हो। पश्चिमी मापदण्ड पर इस्लामी महिला भला कैसे फिट हो सकती है। हां यह बात अपनी जगह किसी हद तक सही है कि मुस्लिम समाज में कहीं-कहीं महिलाओं को वे अधिकार प्राप्त नहीं जो इस्लाम उन्हें देता है। और उसके कारण उन्हें कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। महिलाएं और पुरुष अपने इस्लामी अधिकारों और कर्तव्यों से पूरी तरह परिचित नहीं और उसे पूरी तरह कार्यान्वित नहीं करते।

जहां तक इस्लामी क़ानून का मामला है उसने महिलाओं और पुरुषों को समान अधिकार दिये हैं। आज भी हमारा समाज बेटियों को बोझ समझता है। इस्लाम बेटे और बेटी के बीच कोई भेदभाव नहीं करता। इन्सान की हैसियत से दोनों को बराबर समझता है। शारीरिक और मनोवैज्ञानिक हैसियत में दोनों के बीच बड़ा अन्तर होता है। इस्लाम उस प्राकृतिक अन्तर को सामने रखते हुए अधिकार और कर्तव्य की सूची बनाता है। इस अन्तर को सामने रखते हुए महिलाओं को जो विशेष स्थान मिलना चाहिए वह उसे प्रदान भी करता है और उस का संरक्षण भी करता है, उसे पुरुषों की दया पर नहीं छोड़ता। इस्लाम चाहता है कि महिलाओं पर उनके सामर्थ्य से अधिक बोझ न डाला जाये। पुरुषों का महिला बन जाना और महिलाओं का पुरुष बन जाना प्रकृति के विरुद्ध है और इस्लाम के लिये अस्वीकारीय है।

अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने फ़रमाया— "औरतों से अच्छा व्यवहार करने के बारे में मेरी वसीयत कुबूल करो।" (बुख़ारी, मुस्लिम)

"कुरआन में है :

"और उन से अच्छा बरताव रखो।" (निसा : १९)

"औरतों के अधिकार मर्दों पर मारूफ़ तरीक़े पर ऐसे ही हैं, जैसे मर्दों के अधिकार औरतों पर हैं और मर्दों को उन पर एक दर्जा हासिल है।" (बक़रा : २२८)

विवाह और तलाक़

महिलाओं से सम्बन्धित एक और महत्वपूर्ण विषय विवाह और तलाक़ का भी है। विवाह जिसे निकाह कहा जाता है एक पुरुष और एक स्त्री का अपनी आज़ाद मर्ज़ी से एक दूसरे के साथ पति और पत्नी के रूप में रहने का फ़ैसला है। इसकी तीन शर्तें हैं : पहली यह कि पुरुष वैवाहिक जीवन की ज़िम्मेदारियों को उठाने की शपथ ले, एक निश्चित रक़म जो आपसी बातचीत से तय हो, मेहर के रूप में औरत को दे और इस नये सम्बन्ध की समाज में घोषणा हो जाये। इसके बिना किसी मर्द और औरत का साथ रहना और यौन सम्बन्ध स्थापित करना ग़लत, बल्कि एक बड़ा अपराध है।

पर यह सम्बन्ध दोनों में से किसी एक की इच्छा पर ख़त्म भी हो सकता है, जिसका अधिकार इस्लाम देता है। इसी का नाम तलाक़ या सम्बन्ध-विच्छेद है। इसका एक नियम और तरीक़ा है, स्त्री के लिये भी पुरुष के लिये भी कि यदि उन में से कोई इस वैवाहिक जीवन से संतुष्ट न हो और मिल कर रहना सम्भव न रह जाये तो बताये हुए तरीक़े से—कई चरणों में—दोनों अलग हो जायें और चाहें तो दूसरा विवाह कर लें। तलाक़ कोई मज़ाक़ नहीं। कोई यदि इसे गम्भीरता से न ले तो यह उस व्यक्ति का दोष होगा, नियम का नहीं।

तलाक़ को इस्लाम ने बिल्कुल मजबूरी की हालत में देने की अनुमति दी है, वरना इस के बुरे नतीजों को देखते हुए मर्द को इससे

रोका गया है। अल्लाह के रसल (सल्ल०) ने कहा:

"कोई मोमिन अपनी बीवी से नफ़रत न करे। अगर उसे उसकी एक आदत नापसन्द है तो दूसरी आदत पसन्द हो सकती है।" (मुस्लिम)

अगर पति-पत्नी तलाक़ पर आमादा ही हों तो इस्लामी तरीक़ा यह है कि तलाक़ का आख़िरी फ़ैसला करने से पहले एक-दो आदमी लड़के की ओर से और एक-दो लड़की की ओर से मिल बैठें और कोई ऐसी सूरत निकालें कि आपस में दोनों का मेल-मिलाप हो जाए और तलाक़ की नौबत न आए। लेकिन अगर किसी तरह समझौता न हो सके और तलाक़ के सिवा कोई चारा न हो तो फिर मर्द, औरत को सिर्फ़ एक तलाक़ दे यानी कहे कि मैंने तुझे तलाक़ दी। तलाक़ दो इन्साफ़ करने वाले गवाहों की मौजूदगी में दी जाये। तलाक़ 'तुहर' की हालत (यानी माहवारी के बाद की हालत) में दी जाय, जिस में शौहर ने बीवी के साथ सोहबत न की हो।

तलाक़ के बाद औरत को 'इद्दत' यानी एक ख़ास मुद्दत गुज़ारनी होगी। इस मुद्दत में मर्द फिर से औरत को अपना सकता है। अगर मर्द अपनाने के लिए तैयार न हो तो औरत अलग हो जायेगी। अगर बाद में दोनों चाहें तो दोबारा निकाह हो सकता है।

इस्लाम में तलाक़ का यही सही तरीक़ा है। इस में मर्द को सोच-विचार का काफ़ी मौक़ा मिल जाता है।

अगर औरत मर्द से अलग होना चाहती है, तो वह मर्द से 'खुलअ करा सकती है।

इस्लाम और ग़रीबी

इस्लामी आर्थिक व्यवस्था का परम उद्देश्य यह है कि धन धनी लोगों के बीच ही सिमट कर न रह जाये और ग़रीब निर्धनता की पीड़ा में सिसकता न रहे। क़ुरआन चेतावनी देते हुए कहता है कि धन सिर्फ़ धनी लोगों के बीच ही चक्कर न काटता रहे।

इस्लाम ने सूद (ब्याज) पर प्रतिबन्ध लगा दिया है, जो लोगों के विशेष कर ग़रीब लोगों के शोषण का बड़ा ज़रिया है। धनी लोग तो सूद से हुई आय से मौजमस्ती करते हैं, जबकि ग़रीबों का जीवन सूद की चक्की में पिसता रहता है।

इस्लाम धनवान लोगों को इस बात पर उभारता है कि वे धन जमा करने का रोग न पालें। उन्हें उभारता है कि ग़रीबों के उत्थान पर अपना धन खर्च करें। धनी लोगों पर वार्षिक ज़कात अनिवार्य है, जो ग़रीबों और ज़रूरतमन्दों पर ख़र्च होती है। क़ुरआन धनवानों को बार–बार याद दिलाता है कि उन के माल में ग़रीबों और आर्थिक रूप से वंचित रह जाने वाले लागों का हक़ है।

> "और उनके मालों में मांगने वालों का और उनका हक़ है, जो पाने से रह गये हों।" (ज़ारियात : १९)

अल्लाह के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद सल्ल० फरमाते हैं–

> "वह मोमिन नहीं है, जो ख़ुद तो पेट भर खाये और उस का पड़ोसी भूखा सोये।" (मिश्कात)

यह इस्लामी राज्य का कर्तव्य है कि देश में कोई नंगा और भूखा न सोये। इस्लामी राज्य की आर्थिक नीति शोषण के तमाम दरवाज़े बन्द

करके ग़रीबी का उन्मूलन करती है। हज़रत मुहम्मद (स०) और उनके बाद खलीफ़ा युग का इतिहास इसका गवाह है।

इस्लाम और आतंकवाद

अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिये आतंक से काम लेने का तरीक़ा पुराना है। कभी यह काम व्यक्ति की ओर से हुआ है, कभी व्यक्तियों के किसी समूह की ओर से और कभी सत्ता और सरकार की ओर से। आधुनिक युग का इतिहास बताता है कि आतंकवाद की शुरुआत यूरोप से हुई और वहीं इसे राजनैतिक साधन बनाया गया।

जहां तक इस्लाम का सवाल है, इसमें आतंकवाद की कहीं कोई गुंजाइश नहीं है। इस्लाम शान्ति का धर्म है और इसी को पसन्द करता है। इन्सानी जान और माल का आदर करना सिखाता है। अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिये और अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये सही साधन अपनाने का पक्षधर है।

"ज़मीन में बिगाड़ पैदा न करो।" (बक़रा : १९)

"और ज़मीन में उस के सुधार के बाद बिगाड़ न फैलाओ और भय तथा लालसा से उसे पुकारो। निस्सन्देह अल्लाह की दयालुता उत्तमकारों के समीप है।"

(आराफ़ : ५६)

"जिस ने किसी व्यक्ति को किसी के ख़ून का बदला लेने या ज़मीन में फ़साद फैलाने के सिवा किसी और कारण से क़त्ल किया, तो मानो उसने समस्त मनुष्यों की हत्या कर

डाली और जिस ने किसी की जान बचायी उसने मानो सारे इन्सानों को जीवनदान किया।" (मारदा : ३२)

इस्लाम कैसा समाज बनाता है?

इस्लाम ऐसा आदर्श समाज स्थापित करता है, जा चैन और शान्ति की जगह हो। जहां ऊँच-नीच, छूत-छात, ज़ात-पात ग़रीब-अमीर का कोई भेदभाव न हो और इस कारण कोई पक्षपात न हो जहां आदमी आदमी का ग़ुलाम न हो। हर एक को सच्ची आज़ादी प्राप्त हो। हर कोई गर्व से सिर उठा कर चल सकता हो। कोई भूखा नंगा और बेसहारा न हो। लोग एक-दूसरे को सहारा देने वाले हों। हर एक को न्याय प्राप्त हो। महिलाओं का सम्मान हो, उनके अधिकारों की रक्षा हो और उन्हें पुरुषों की हवस का निशाना न बनना पड़े। अवैध काम करने वालों को बार-बार सोचना पड़े। जहां नैतिक मूल्यों का आदर किया जाता हो; जहां युवकों का चरित्र विश्वसनीय हो और वे रचनात्मक कामों में लगे हों; जहां भलाई के कामों में प्रतिस्पर्धा हो और लोग स्वच्छता और पुर्णता की ओर बढ़ रहे हो।

इस्लाम कैसा इन्सान बनाता?

इन्सान को अच्छा इन्सान बनाने की इस्लाम से बेहतर दूसरी कोई व्यवस्था नहीं। इस्लाम मनुष्य को उसका सही स्थान बताता है, उसकी महानता का रहस्य उस पर खोलता है उसका दायित्व उसे याद दिलाता है और उसकी चेतना को जगाता है। उसे याद दिलाता है कि उसे एक उद्देश्य के साथ पैदा किया गया है, निरर्थक नहीं। इस संसार का जीवन मौजमस्ती के लिये नहीं है। हमें अपने हर काम का

हिसाब अपने मालिक को देना है। यहां हर काम ख़ूब सोच-समझ कर करना है कि यहां हमारे कामों से समाज सुगन्धित भी हो सकता है और हमारे दुष्कर्मों से एक अभिशाप भी बन सकता है। इस्लाम जो इन्सान बनाता है वह दूसरों का आदर करने वाला, सच्चाई पर जमने वाला, अपना वादा निभाने वाला, कमज़ोरों का सहारा बनने वाला और भलाइयों में पहल करने वाला होता है। वह स्वयं भी बुराइयों से बचता है और दूसरों को भी इस से रोकता है। इस्लामी आदर्शों में ढला हुआ इन्सान भलाइयों का पुतला और बुराइयों का दुश्मन होता है।

आख़िरी बात

इस्लाम के इस संक्षिप्त से परिचय से उसका अर्थ और जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण हमारे सामने है। यह तथ्य भी साफ़ है कि धर्म सनातन है। अल्लाह ने जब—जब अपने दूत भेजे उनके साथ इस्लाम ही आया और लोगों तक पहुंचा। सारी धार्मिक पुस्तकों में क़ुरआन ही सुरक्षित हमारे पास है और तमाम् धर्मगुरुओं में हज़रत मुहम्मद (स०) का जीवन पूरे विस्तार के साथ हमारे पास है। हमें इन दोनों चीज़ों की ओर इस तरह आगे बढ़ना चाहिए जिस तरह हम अपनी उस चीज़ की ओर दौड़ते हैं जो खो जाने के बाद हमें मिल गई हो। सच्चाइयां भिन्न-भिन्न स्थानों पर हो सकती हैं, परन्तु हमें समुचित और एकत्रित सच्चाई की ओर हाथ बढ़ाना चाहिए। अन्त में हम अल्लाह के दूत हज़रत यूसुफ़ (अ०) की बात पर अपनी बात ख़त्म करना चाहेंगे जो उन्होंने जेल के साथियों से कही थी : "हमारा यह काम नहीं कि ईश्वर के साथ किसी को साझी ठहरायें। वास्तव में यह अल्लाह का उदार अनुग्रह है हम पर और सारे लोगों पर (कि उसने अपने सिवा किसी का बन्दा हमें नहीं बनाया) परन्तु अधिकतर लोग

कृतज्ञता नहीं दिखाते। हे जेल के साथियो, तुम स्वयं ही सोचो कि बहुत से विभिन्न प्रभु अच्छे हैं या वह एक ईश्वर जिसे सब पर प्रभुत्व प्राप्त है? उसे छोड़कर तुम जिन की बन्दगी कर रहे हो वे इसके सिवा कुछ नहीं हैं कि बस कुछ नाम हैं जो तुमने और तुम्हारे बाप–दादा ने रख लिये हैं, अल्लाह ने उनके लिये कोई सनद नहीं भेजी। शासन की सत्ता अल्लाह के सिवा किसी के लिये नहीं है। उसका आदेश है स्वयं उसके सिवा तुम किसी की बन्दगी न करो। यही ठेठ सीधी जीवन प्रणाली है, परन्तु अधिकतर लोग जानते नहीं।" अल–यूसुफ ३८–४०

अनमोल पुस्तकें

- □ **अनूदित क़ुरआन मजीद**-अनुवादक : मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ — 100.00
  क़ुरआन मजीद का सरल हिन्दी भाषा में अनुवाद। साथ ही संक्षिप्त व्याख्या भी।
- □ **पवित्र क़ुरआन** : एक नज़र में-डॉ० मक़सूद आलम सिद्दीक़ी — 4.00
  पवित्र क़ुरआन की मुख्य शिक्षाओं का संकलन।
- □ **क़ुरआन मजीद** (केवल हिन्दी अनुवाद)-मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ — 50.00
- □ **ला इलाह इल्लल्लाह : एक वैज्ञानिक समीक्षा**-मु० यूनुस क़ुरैशी — 40.00
- □ **इस्लाम के मूलाधार : निर्माण और विकास**-मौलाना सदरुद्दीन इस्लाही — 25.00
- □ **मुहम्मद (सल्ल०) - इस्लाम के पैग़म्बर**-प्रो० के० एस० रामाकृष्णा राव — 3.00
- □ **आख़िरी पैग़म्बर**-सैयद मुहम्मद इक़बाल — 1.50
- □ **पैग़म्बरे-इस्लाम की महानता : ग़ैर-मुस्लिम विद्वानों की नज़र में**
  अबू मुहम्मद इमामुद्दीन रामनगरी — 1.50
- □ **इस्लाम : एक अध्ययन**- डॉ० अमीना अली नाफ़ई — 3.00
  इस्लाम के सारे तत्वों का संक्षिप्त विवरण
- □ **इस्लाम : एक परिचय**- अबू मुहम्मद इमामुद्दीन रामनगरी — 12.00
- □ **इस्लाम और मानव-समाज**- सैयद मु० इक़बाल — 4.00
- □ **दासता से इस्लाम की ओर**- कोटिमन्नल पेरुमाल — 10.00
- □ **डॉ० अम्बेडकर और इस्लाम**- आर० एस० विद्यार्थी — 3.00
- □ **मानव-एकता का आधार**- मुहम्मद असलम — 6.00
- □ **देशवासियों के नाम मधुर संदेश**- डॉ० इश्तियाक़ अहमद — 3.00
- □ **शॉर्ट कट उर्दू कोर्स**-डॉ० फ़रहत हुसैन — 5.00
- □ **साम्प्रदायिक दंगे और हमारी ज़िम्मेदारियां**- इनामुर्रहमान ख़ाँ — 2.50
- □ **मानव पर एकेश्वरवाद का प्रभाव**- मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ — 2.00
- □ **विश्व-समाज**-डॉ० इश्तियाक़ अहमद — 2.50

पुस्तक-सूची मुफ़्त मंगायें।

मधुर सन्देश संगम

अबुल फ़ज़्ल इन्क्लेव, जामिआनगर, नई दिल्ली-25